अगस्त १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

ओक्खित चक्खु, न च पादलोलो,
ज्ञानानुयुत्तो बहुजागरस्स।
उपेक्खमारब्भ समाहितत्तो,
तक्कासय कुक्कुच्चियूप छिन्नो सुतनिपात - ५४१८.

आंखें नीची हों, पांव संयत हों, ध्यानानुरत हो, बहुजागरूक हो, उपेक्षावान हो और समाधिस्थ होकर तर्कों के आश्रय और व्याकुलता को नष्ट करे।

कैसे सज्जन लोग!
बर्मा का भिक्षु संघ

भगवान बुद्ध ने स्वयं अपने भीतर निर्वाणिक शांति की अनुभूति की और जीवनभर लोगों को इस परम शांति की स्वानुभूति कर सकने की विधि सिखाते रहे। उन्होंने स्वयं अपना चित्त नितांत निर्मल कर लिया और लोगों को चित्त निर्मल करने की यही विद्या सिखाते रहे। स्वभावतः भगवान बुद्ध शांतिप्रिय थे, निर्मलताप्रिय थे।

उन्हें कोलाहल और गंदगी दोनों ही अप्रिय थी। यही कारण है कि भगवान बुद्ध के मंदिरों में और भिक्षुओं के विहारों में आज भी निःशब्दता और स्वच्छता को अत्यंत महत्व दिया जाता है। बाल्य व किशोर अवस्था में बर्मा की पुरानी राजधानी मांडले में रहते हुए विहारों में तो अधिक जाना नहीं हुआ परन्तु जहां कहीं बुद्ध मंदिरों में गया, मन बहुत प्रभावित हुआ। अपने यहां के मंदिरों में कोलाहल और गंदगी, दोनों की भरमार देखी। अतः उसके मुकाबले वहां की शांति और स्वच्छता मन को बहुत भायी।

उन्हीं दिनों सुबह-सुबह सूर्योदय के पूर्व गेरुए वस्त्रधारी भिक्षुओं की कतार पर कतार भिक्षाटन के लिए निकलती तो उन्हें देखकर मन में बहुत श्रद्धा जागती। सभी भिक्षु नजर नीची किए हुए **[ओक्खित्त चक्खु]** और मौन रहकर **[तुण्ही भावो]** नपे तुले कदमों में चलते। जैसे शांति के प्रतीक चल रहे हों। श्रद्धालु गृहस्थ खूब जानते कि यही समय है भिक्षुओं की गोचरी का। कोई-कोई भिक्षु एकाहारी होते हैं। पर अधिकांश दो बार आहार लेते हैं। आहार एक बार लें या दो बार, पर लेते हैं मध्यान्ह के पूर्व ही। याने आधे दिन का नित्य उपवास सभी करते हैं। अतः प्रातः काल प्रातराश भूखे पेट का प्रथम आहार होता है। इसलिए प्रातराश का भोजनदान अधिक पुण्य-प्रदायक माना जाता है। श्रद्धालु गृहणी बहुत सुबह उठकर प्रसन्नमन से दान देने के लिए भोजन तैयार करती और घर के दरवाजे पर भोजनभरा पात्र रखकर भिक्षुओं के कतार की श्रद्धापूर्वक प्रतीक्षा करती। भिक्षु नीची नजर किए हुए आते, बिना कुछ बोले, भिक्षा लेकर नीची नजर किए हुए ही आगे बढ़ जाते। जिस घर के दरवाजे पर कोई दायक या दायिका खड़े होते, वहीं रुकते। अन्य घरों के सामने कोई रुकता भी नहीं। भिक्षा पाने के लिए कोई कभी एक शब्द भी नहीं बोलता। इसकी तुलना में अपने यहां भीख मांगने वालों की जो हाय-हाय, चीख-पुकार; पंडे-पुजारियों की छीना-झपटी, तू-तू, मैं-मैं; पुरोहितों द्वारा यजमान से जबरन दान लेने का प्रयत्न, उसकी उदारता की मिथ्या प्रंशसा करके अथवा इस प्रकार सफल न हों तो उसकी कंजूसी की भारी भर्त्सना करके मानो लाठी मार कर दाता के मन में करुणा जगायी जा रही हो। दोनों दृश्यों में कितना बड़ा अंतर, कितनी बड़ी असमानता।

भगवान बुद्ध ने भिक्षु के रहन-सहन, खान-पान, हलन-चलन आदि के लिए जो नियम बनाए, उनका आज २५०० वर्ष बाद भी अक्षरशः पालन किया जाता है। शांतता, शालीनता और सौम्यता के इस आदर्श को देखकर किसी भी सहृदय व्यक्ति के मन में श्रद्धामय नमन का भाव जागना स्वाभाविक है। मेरे किशोर मानस पर भी इसकी जो छाप लगी, वह आज तक कायम है।

***

पिछले वर्ष सन् १९९० में लगभग दो दशकों की लंबी अवधि के बाद जन्मभूमि और धर्मभूमि बरमा जाना हुआ तो यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि रंगून में बसे मेरे पुत्र का मकान पूज्य महासी सयाडो के प्रसिद्ध साधना केन्द्र **"तातना यैता"** के समीप है। सुबह-सुबह सूर्योदय के पूर्व इस आश्रम से लगभग १५० भिक्षुओं की कतार भिक्षाटन के लिए निकलकर घर के सामने से गुजरी तो मन प्रसन्नता से भर उठा। बहू सुशीला ने भिक्षुओं के लिए कुछ आहार बना रखा था। एक-एक भिक्षु के भिक्षापात्र में यह आहार डालते हुए मन पुलक रोमांच से भर-भर उठा। सारे के सारे भिक्षु विपश्यी साधक! स्मृति संप्रज्ञान के साथ चारिका के लिए निकले। **'ओक्खित्त चक्खु'** [नजर नीची] **'तुण्ही भावो'** [पूर्ण मौन] और चित्त साधना में लगा हुआ। हर भिक्षु घर के दरवाजे के सामने कुल १०-१५ सैकेण्ड रुकता, ताकि श्रद्धालु गृहस्थ भिक्षापात्र में पिण्डदान देने का पुण्यलाभ ले सके और फिर उसी प्रकार नजर नीची किए, पूर्ण मौन साधे इस क्षण की आभ्यंतरिक सच्चाई में लीन आगे बढ़ जाता। अन्तरतप में सतत निमग्न इन अप्रमत्त तपस्वियों को दिन का प्रथम भोजन दान देने से अधिक सुखद पुण्य और क्या होगा भला? अब भी याद करता हूं तो समग्र तन और मन धर्म-स्फुर्णा से लहराने लगता है। साधुओं की वह जमात मानो कबीर की इस वाणी को झुठला रही हो -

लालों की नहीं बोरियां, हंसों की नहीं पांत।
सिंहों के लँहड़े नहीं, साधु न चले जमात॥

दिन भर बुद्धि विलास और वाणी विलास में निमग्न रहनेवाला बहिर्मुखी साधु, वस्तुतः साधु नहीं। साधु वही जो सतत साधना में रत रहे। एक, दो या तीन महीनों के दार्घ गंभीर शिविर में सम्मिलित हुए साधनारत साधुओं की जमात का अस्तित्त्व दुर्लभ। यदि यह सुलभ हो जाय तो दर्शन दुर्लभ। यदि यह भी सुलभ हो जाय तो उन्हें दिवस का प्रथम पिण्डदान दे सकने का सुअवसर दुर्लभ। इन सभी दुर्लभों के सुलभ होने पर मन हर्ष-विभोर हुआ। तन गद्गद् हुआ।

महासी सयाडो

मेरे भारत प्रवास के दौरान पूजनीय महासी सयाडो का शरीर शांत हुआ। अतः लौटा तो उनके दर्शन नहीं कर सका। सन् १९६९ में बर्मा छोड़ने के पूर्व उनसे काफी निकट का संपर्क रहा।

महासी सयाडो साधना के एक प्रमुख आचार्य ही नहीं, बल्कि बुद्धवाणी के प्रकांड पंडित भी थे। छट्ठसंङ्गायन में आदरणीय मिं गुं सयाडो के साथ उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई। पर उनसे मेरा संपर्क कुछ समय बाद ही हुआ।

बुद्ध शासन समिति के प्रमुख ऊ छां ठुन समय-समय पर विदेशों से लोगों को आमंत्रित करते और तातनायैता में याने पूज्य महासी सयाडो के आश्रम में उनके लिए ध्यान भावना सीखने का भी प्रबंध करते रहते थे। वहां कभी-कभी कुछ एक भारतीय भी आते थे और कई दिनों रहकर साधना करते थे। मैं कई बार उन भारतीयों को भारतीय निरामिष भोजन और फलादि भेंट देने जाया करता था। परन्तु जब कभी तातनायैता आश्रम में भोजन इत्यादि लेकर जाता तो पहले श्रद्धेय महासी सयाडो को भोजनदान देकर ही साधकों के पास भोजन ले जाता। यह मेरा सौभाग्य था। ऐसे अनेक अवसरों पर महासीजी से धर्मचर्चा कर पाने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार मेरा उनसे संपर्क बढ़ता गया। बहुधा वे मेरी साधना के बारे में पूछ-ताछ करते। वे इस बात को बखूबी जानते थे कि मैं सयाजी ऊ बा खिन का शिष्य हूं और उनके बताए मार्ग पर ही चलता हूं। शुरू-शुरू में तो यह भय रहा कि कहीं पूज्य सयाडो अपनी विधि से ध्यान करने का मुझ पर दबाव न दें। मेरे कुछ मित्रों ने समय-समय पर ऐसा दबाव मुझ पर डाला भी था, परन्तु मुझे पूज्य गुरुदेव की विधि से इतना संतोष था और वह मेरे लिए इतनी मनोनुकूल थी कि मुझे कभी और कुछ सीखने की कोई ख्वाहिश नहीं रह गयी थी। लेकिन यदि महासी सयाडो स्वयं अपनी ओर से आग्रह करते तो मेरे लिए बड़ा धर्मसंकट उत्पन्न हो जाता। परन्तु उन्होंने कभी ऐसी अप्रिय स्थिति पैदा नहीं होने दी।

साधना के बारे में जब कभी उनसे वार्तालाप होती, वे सदा व्यावहारिक सुझाव ही देते और मुझे अपनी विधि से ही साधना करते रहने के लिए अनुप्राणित करते। मैं जो कुछ कर रहा था उसकी सराहना करते और इसी के द्वारा लक्ष्य तक पहुँचने का प्रोत्साहन देते। अपनी विधि केवल एक बार आजमाकर देख लेने का भी कभी सुझाव नहीं दिया। इससे मेरे मन में उनके प्रति जागा हुआ श्रद्धा का भाव पुष्ट ही हुआ।

मुझे बताया गया कि वे किसी गृहस्थ के घर आमंत्रण पर भोजन करने नहीं जाते। श्रद्धालु लोग उनका भोजन वहीं पहुँचा देते थे अथवा उनके भिक्षु शिष्य जो गोचरी मांग कर लाते वही ग्रहण करते थे। परन्तु एक दिन बड़ी हिचक के साथ मैंने उन्हें अपने घर आमंत्रित किया। उन्होंने मुस्कराकर स्वीकृति दी। मुझे बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ। वह अपने तीन शिष्यों सहित भोजन के लिए घर पधारे। उस दिन मैं जिस विधि से साधना करता था, उस पर देर तक चर्चा होती रही। उन्होंने सयाजी की शिक्षा-विधि की बड़ी सराहना की। साधना के संबंध में उनके विचार जरा भी संकुचित नहीं थे।

यों जैसे-जैसे उनसे संपर्क बढ़ा, वैसे वैसे उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती ही गयी।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.